International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(1): 75-77
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 02-11-2021
Accepted: 18-12-2021

हीरालाल
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
पञ्जाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ,

Corresponding Author:
हीरालाल
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
पञ्जाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ।

श्रीमद्भगवद्गीता का सकारात्मक पक्ष

हीरालाल

प्रस्तावना

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय वाङ्मय का सर्वोपरि व सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसमें अध्यात्म, धर्म व आचार के गूढ़ प्रश्नों का सूक्ष्म और हृदयग्राही विवेचन प्राप्त होता है, जो कि सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। श्रीमद्भगवद्गीता सकारात्मक चिन्तन का अजस्त्र स्त्रोत है, जो सामान्य स्तर पर नहीं, अपितु स्थितप्रज्ञ और ब्राह्मी स्थिति पर चेतना का विकास करती है।

इसका स्पष्ट उदाहरण है – अर्जुन, वह वीर था, योद्धा था। कुरुक्षेत्र युद्ध से पूर्व कई अवसरों पर अपनी योग्यता प्रमाणित कर चुका था। घर से वह युद्ध हेतु तैयार होकर आया था, किन्तु युद्धस्थल पर अपने सम्बन्धियों को मरने-मारने पर उतारु देखकर उसका मन काँप उठा। उसका मन वैचारिक अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त हो गया। यह द्वन्द्व अच्छाई और बुराई के मध्य नहीं उठा था, यह संघर्ष दो आदर्शों के मध्य था।

पहला युद्ध में क्षत्रिय धर्म को निभाने का आदर्श और दूसरा परिवार के आदरणीय, पूजनीय सदस्यों पर शस्त्र न उठाने का आदर्श। इसमें दूसरा आदर्श अधिक प्रबल था। अतः वह क्षत्रिय वीर अर्जुन युद्ध से नहीं, अपितु पारिवारिक युद्ध की विभीषिका से अधिक स्तब्ध हुआ किंकर्त्तव्यविमूढ होकर उसने अपनी दुर्बलता के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किये। उसकी मानसिक और शारीरिक स्थिति बदल गई –

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।।
गाण्डीवं स्त्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।। [1]

वह कहता है कि मेरे अंग-अंग ढीले पड़ रहे हैं, मुख सुखा जा रहा है, शरीर काँप रहा है, रोंगटे खड़े हो रहे हैं। मेरे हाथ से गाण्डीव धनुष गिरा जा रहा है, त्वचा में दाह हो रहा है, शरीर द्वारा खड़े रहने में असमर्थ हूँ। मेरा मन चकरा रहा है। उसने यहाँ तक कह दिया कि मुझे मारने पर अथवा तीनों लोकों के राज्य के लिए भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता, पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या है –

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं न महीकृते।। [2]

इस प्रकार अर्जुन का मन युद्ध-विरोधी विचारों से भर गया। उसकी निवृत्तिवादी विचारधाराओं ने जीवन-संघर्ष से पलायन के अनेक बहाने ढूंढ लिए थे। गीताकार ने अर्जुन की मनोस्थिति के माध्यम से इसी ओर संकेत किया है। ऐसी नकारात्मक मानसिक स्थिति को भगवान् श्रीकृष्ण ने युद्ध के विषम वातावरण में सकारात्मक चिन्तन में परिवर्तित करने का अपूर्व मार्ग दिया। उन्होंने नकारात्मक चिन्तन की मूल अविद्या का नाश कर अर्जुन की चेतना को उस परा स्तर तक उठाया, जहाँ जगत् और मानवीय व्यवहार एवं कर्म के मूल्यांकन पूर्वक निर्वाह की सकारात्मक चिन्तन-शक्ति और नवीन अमोघ दृष्टि विकसित हुई। इसके लिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से मानव मन की तीनों प्रवृत्तियों-क्रिया, भाव और ज्ञान को ध्यान में रखकर सम्पूर्ण मानवता को प्रेरित किया है।

मानव मन की सर्वप्रथम प्रवृत्ति है – क्रिया। क्योंकि कोई भी मनुष्य कर्म किए बिना नहीं रह सकता है। [3] क्रियात्मक पक्ष जिन व्यक्तियों में प्रबल होता है, वे संकल्प प्रधान होते हैं। नये-नये लक्ष्यों को निर्धारित कर उन्हें प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयास करते हैं। किन्तु कर्मों का अपेक्षित परिणाम प्रकट नहीं होने पर दुःखी होते हैं। हतोत्साहित होकर नकारात्मक विचारों से इतने अधिक ग्रस्त हो जाते हैं कि पागलपन अथवा आत्महत्या की स्थिति तक पहुँचने लगते हैं। ऐसी स्थिति से बचने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्मयोग का अद्भुत मार्ग बतलाया है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। [4]

व्यक्ति केवल कर्म करे, फल की इच्छा न करे। क्योंकि फलासक्ति से कर्मबन्धन दृढ़ होता है और फल की इच्छा रखने वाले कृपण होते हैं।[5] अंहता, ममता और आसक्ति फलार्थी होने पर होती है। यदि व्यक्ति को फल के प्रति आसक्ति नहीं होगी तो अपेक्षित फल प्राप्त न होने पर वह निराश भी नहीं होगा, अनैतिक साधनों से फल प्राप्त करने का प्रयास नहीं करेगा। कर्म को स्वतः नैतिक मूल्य के लिए किया जाए। जहाँ यह शंका होती है कि गीता में एक ओर तो कर्म करने का आदेश दिया गया है, दूसरी ओर फलेच्छा से रहित होकर कर्म करने को कहा गया है। किन्तु फल की कामना के बिना कर्मों में प्रवृत्ति कैसे होगी? इसका समाधान यह है कि अज्ञानी व्यक्ति की कार्यपूर्ति के लिए कर्मों में प्रवृत्त होना है [6] और ज्ञानी व्यक्ति आसक्ति का त्याग कर आत्म-शुद्धि के लिए कर्म करने में प्रयास करें।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये।। [7]

अतः स्पष्ट है कि फल में आसक्ति से रहित होने पर ही व्यक्ति दुःख अशान्ति और नकारात्मक विचारों से मुक्त हो सकता है। किन्तु इस स्थिति की सिद्धि के लिए स्थित प्रज्ञता आवश्यक है। स्थितप्रज्ञ की बुद्धि स्थिर रहती है। सामान्य मनुष्य की बुद्धि विभिन्न कामनाओं के प्रति आकृष्ट होती है। इसके विपरीत स्थितप्रज्ञ अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर आत्मसन्तुष्ट रहता है। [8] दुःखों की प्राप्ति होने पर उसके मन में उद्वेग नहीं होता और सुखों की प्राप्ति में सर्वथा निःस्पृह रहता है।

वह राग, भय और क्रोध से परे होता है। [9] जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है, उसी प्रकार स्थितप्रज्ञ अपनी इन्द्रियों को विषयों से समेट कर अपने वश में कर लेता है और समाहित चित्त को ईश्वर में लगाता है। [10] इसके विपरीत विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना सिद्धि में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मोह अथवा अविवेक उत्पन्न होता है और अविवेक से स्मृति भ्रमित होने से ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है और ज्ञान शक्ति के नष्ट होने से व्यक्ति अपने श्रेय साधन से च्युत हो जाता है। [11]

राग-द्वेष और आसक्ति के कारण नकारात्मक विचारों से युक्त होकर पाशविक प्रवृत्तियों की ओर प्रवृत्त होता है। अतः निष्काम कर्मयोग, स्थितप्रज्ञता की स्थिति सकारात्मक चिन्तन का चरम विकास है।

मानव मन की दूसरी प्रवृत्ति है – भाव। भावप्रधान व्यक्ति अनेपेक्षित अथवा विपरीत परिस्थिति में नकारात्मक विचारों से विचलित हो जाते हैं। अतः भावप्रधान व्यक्ति के लिए भगवान् ने भक्तियोग का सुन्दर मार्ग बताया है। भक्तियोग में भक्त सांसारिक व्यक्ति अथवा पदार्थ की अपेक्षा ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण भाव रखता है। यह अनन्य भाव ही भक्ति है। [12] यह भक्ति श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन रूप से नौ प्रकार की भक्त के भावानुसार हो सकती है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वदनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।। [13]

जब भक्त ईश्वर को पूर्ण समर्पित हो जाता है तो उसका योग और क्षेम ईश्वर वहन करते हैं [14] और भक्त इस दृढ़ विश्वास से कि मेरी सभी प्रकार की चिन्ता ईश्वर करते हैं, वह प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रहता है। दुःख अथवा प्रतिकूल परिस्थितियाँ उसे विचलित नहीं होने देती हैं।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।। [15]

मानव मन की तृतीया प्रवृत्ति है – ज्ञान। ज्ञानप्रधान व्यक्ति बुद्धि से काम करता है। किन्तु बुद्धि से काम करने पर भी जब अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होता, तो वह सर्वाधिक उद्विग्न और विचलित होता है। अतः ऐसे ज्ञानप्रधान लोगों के लिए श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञानयोग का प्रतिपादन करती है। मन, बुद्धि, अंहकार, कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ सभी को प्रकृति का विकार बताकर तज्जन्य कर्म भी प्रकृति का विकार है। [16] पुरुष तो केवल दृष्टमात्र है। भगवान् का ही साक्षात् स्वरूप है। [17] इस प्रकार का ज्ञान ज्ञानी के सम्पूर्ण नकारात्मक दृष्टिकोण का उन्मूलन कर देता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता सकारात्मक पक्ष की अपूर्व निधि है। निष्काम कर्मयोग और स्थितप्रज्ञ आदि के द्वारा वह कर्मप्रधान, ज्ञानप्रधान और भक्तिप्रधान तीनों ही प्रकार के व्यक्तियों के नकारात्मक पक्ष को सकारात्मक कर उसकी चेतना का ऐसा रूपान्तरण करती है, जहाँ नकारात्मक पक्ष का स्पर्श तक नहीं हो पाता है।

संदर्भ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता – 1.29-30
2. वही – 1.35
3. न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
   कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। वही – 3.5
4. वही – 2.47
5. वही – 2.49
6. वही – 5.12
7. वही – 5.11
8. वही – 2.55
9. वही – 2.56
10. वही – 2.58
11. वही – 2.62-63
12. अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
    तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।। वही – 8.14
13. श्रीमद्भागवत, गीताप्रेस गोरखपुर – 7.5.23
    अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
14. तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।
    श्रीमद्भगवद्गीता – 9.22
15. वही – 18.54
16. वही – 7.4-6
17. वही – 7.18